ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-5* June- 2021
Innovation The Research Concept

राज्यों की ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना

Postmodern Concept of Polarized Sovereignty

Paper Submission: 03/06/2021, Date of Acceptance: 23/06/2021, Date of Publication: 25/06/2021

मनमीत सोनी
एडवोकेट
राजस्थान हाइकोर्ट
चूरू, राजस्थान, भारत

सारांश

दुनिया के आधुनिक इतिहास में सम्प्रभुता अर्थात् 'सोवरेनिटी' किसी भी राज्य के अस्तित्व का एक अनिवार्य घटक है। इसके बिना किसी स्वतन्त्र व आत्मनिर्भर राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। समय–समय पर अनेक विधिशास्त्रियों ने सम्प्रभुता जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने मत प्रकट किए हैं। विधि के अध्येताओं के लिए आज के परिप्रेक्ष्य में, जब कोविड'19 की परिस्थिति बनी हुई है और राज्यों की अर्थव्यवस्था एक–दूसरे पर तेजी से आश्रित होती जा रही है, विभिन्न विधिशास्त्रियों के सम्प्रभुता से संबंधित विचारों का अध्ययन करते हुए उनकी सम्प्रभुता–स्थिति में आने वाले परिवर्तनों को जानना बहुत आवश्यक है। इन परिवर्तनों के आधार पर ही, भूमंडलीकरण के चलते, सम्प्रभुता की अवधारणा में अपेक्षित परिवर्तनों के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है, क्योंकि कोविड'19 के पश्चात् चीन एक अन्तरराष्ट्रीय खलनायक के रूप में सामने आएगा – यह तय है।

Sovereignty i.e. ' Sovereignty' is an essential component of the existence of any state in the modern history of the world. Without this, no independent and self-reliant state can be imagined. From time to time, many jurists have expressed their views on such an important issue as sovereignty. In today's perspective for the scholars of Law, when the situation of COVID'19 persists and the economies of the states are becoming increasingly dependent on each other, studying the views related to sovereignty of various jurists on their sovereignty-status It is very important to know about the upcoming changes. On the basis of these changes, any conclusion can be reached regarding the expected changes in the concept of sovereignty due to globalization, because after Kovid'19 China will emerge as an international villain - it is certain.

मुख्य शब्द : सम्प्रभुता, सोवरेनिटी, अन्तरराष्ट्रीय खलनायक, शक्ति–पृथक्करण, मूलमानक, न्यायिक पुनरावलोकन, उत्तर–सम्प्रभुता, विलम्बित सम्प्रभुता, ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना।

Sovereignty, International villainy, Separation of Power, Grundnorm, Judicial Review, Post-sovereignty, Late Sovereignty, Postmodern Concepts of Polarized Sovereignty.

प्रस्तावना

आधुनिक विश्व–इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो 'सम्प्रभुता' या 'सोवरेनिटी' शब्द फ्रांसीसी भाषा के 'सोवरेन' से बना है, जबकि मूल रूप से यह 'सोवरेन' शब्द लैटिन के 'सुपरनस' से व्युत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है – एक ऐसी उच्चतम शक्ति या सर्वोच्च शक्ति, जिसे नियंत्रित करने वाली कोई अन्य शक्ति न हो। विधिशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में सम्प्रभुता की अवधारणा का उदय मध्यकालीन राज्यों के विकास में मिलता है, जहाँ केन्द्रीकृत राष्ट्रीय सरकारें उभर कर सामने आईं। उस समय राज्यों को अपनी अधिकारिता को अमली जामा पहनाने के लिए एक ऐसी अवधारणा की आवश्यकता थी, जिसके अन्तर्गत उन्हें सीधे और स्पष्ट रूप से कोई भी भीतरी या बाहरी शक्ति चुनौती न दे सके। ऐसा माना जाता है कि सम्प्रभुता के विचार का प्रारम्भ फ्रांसीसी विधिशास्त्री जीन बोदाँ के माध्यम से हुआ।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध–आलेख का उद्देश्य, कोविड–19 से उत्पन्न हुए वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, राज्यों की सम्प्रभुता–संकल्पना में प्रारंभ से अब तक आए परिवर्तनों को रेखांकित करते हुए उसमें होने वाले सम्भावित परिवर्तनों का

स्पष्टीकरण करना है। विधिशास्त्र में राज्य और सम्प्रभुता का विषय अन्तर्सम्बन्धित है, इसलिए इस आलेख में, कोविड–19 से उत्पन्न हुए वर्तमान वैश्विक परिदृष्य में, इस अन्तर्सम्बन्ध को न केवल पुनरावलोकित किया गया है, बल्कि लेखक द्वारा *ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना (पोस्टमॉडर्न कॉन्सेप्ट ऑफ पोलराइज्ड सोवेरेनिटी)* के रूप में सम्प्रभुता की एक नई संकल्पना प्रस्तुत की गई है, जिसका व्यापक रूप से परीक्षण अपेक्षित है – क्योंकि कोविड–19 के अपराधी के रूप में उभरते जा रहे अन्तरराष्ट्रीय खलनायक चीन के विरुद्ध ध्रुवीकृत होने वाले राष्ट्रों को, अपना राजनैतिक–आर्थिक व भौगोलिक अस्तित्व बचाने के लिए, अब अपना नेतृत्त्व करने वाले राष्ट्र में विश्वास प्रकट करते हुए अपनी पारम्परिक सम्प्रभुता का किसी न किसी विश्वसनीय रूप में परित्याग करना ही होगा, जिसे उनकी जनता भी अपने राष्ट्र के बिना अधिक विरोध किए स्वीकार कर ही लेगी।

बोदाँ का सम्प्रभुता–सिद्धान्त

जीन बोदाँ को सम्प्रभुता की आधुनिक अवधारणा का जनक माना जाता है। बोदाँ के अनुसार सम्प्रभुता राज्य की एक अनियंत्रित शक्ति है, जिस पर विधि के माध्यम से कोई नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता। हाँ, विधि से इतर ऐसे कुछ माध्यम हो सकते हैं, जिनसे सम्प्रभुता पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। बोदाँ ने अपनी पुस्तक *डी लॉ रिपब्लिक* में सम्प्रभुता को किसी राज्य के नागरिकों और उसकी प्रजा पर विधि द्वारा स्थापित अनियंत्रित शक्ति कहा है। बोदाँ के अनुसार सम्प्रभुता राज्य की परम और शाश्वत शक्ति है, जिसे किसी भी प्रकार की चुनौती नहीं दी जा सकती। बोदाँ ने अपनी सम्प्रभुता की अवधारणा में कुछ निश्चित तत्त्व जोड़े हैं। बोदाँ के अनुसार सम्प्रभुता शाश्वत, अप्रत्यायोजित, असंक्रमणीय और अवर्णनीय है। बोदाँ के अनुसार सम्प्रभु स्वयं या अपने उत्तराधिकारियों को बाध्य नहीं कर सकता है और उसे अपनी प्रजा के प्रति विधितः उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। ऐसा इसलिए है कि राज्य की विधि शुद्धतः सम्प्रभु का समादेश है और समादेश की शक्ति पर कोई विधिक सीमा नहीं लगाई जा सकती। बोदाँ ने कहा कि राज्य होने का तात्पर्य ही यह है कि उस राज्य में सम्प्रभुता निहित है। किसी भी राज्य में सरकारों के प्रकार बदल सकते हैं, लेकिन वे सरकारें राज्य में निहित सम्प्रभुता से किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर सकतीं। बोदाँ के सम्प्रभुता सम्बन्धी विचारों की जॉर्ज एच. सेवाइन ने निम्न तीन आधारों पर आलोचना की है –

1. बोदाँ ने सम्प्रभुता पर विधिक सीमा तो स्वीकार नहीं की, परन्तु विधि से इतर सीमाओं को स्वीकार किया है।
2. बोदाँ ने सम्प्रभुता को सांविधिक विधि के अधीन माना है।
3. बोदाँ के अनुसार सम्प्रभु सम्पत्ति के अधिकार को स्वामी की सहमति के बिना प्रभावित नहीं कर सकता।

हॉब्स का सम्प्रभुता–सिद्धान्त

अवधारणा के स्तर पर अँगरेज विचारक हॉब्स सम्प्रभुता की शक्ति को बोदाँ से भी आगे ले गया और परम सम्प्रभुता की दलील पेश की। उसके अनुसार तलवार के बिना प्रसंविदा केवल शब्द रह जाती है और उसमें इतना सामर्थ्य नहीं होता कि वह लोगों को सुरक्षा प्रदान कर सके। हॉब्स के अनुसार लोगों की लोलुपता, क्रोध आदि आवेगों पर तब तक नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सकता, जब तक उन्हें किसी उत्पीड़क–शक्ति का भय न हो।

हॉब्स के अनुसार किसी भी सम्प्रभु की शक्ति पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती और यदि कोई सीमा लगाई भी जा सकती है, तो वह केवल स्वयं सम्प्रभु द्वारा ही लगाई जा सकती है। हॉब्स ने तो चर्च तक को सम्प्रभु के अधीन माना। हॉब्स के अनुसार जनता को असामयिक विधियों के प्रवर्तन के विरोध का अधिकार भी नहीं है। यदि राजा आततायी है, तो वह जीवनोपरांत शाश्वत मृत्यु का कष्ट भुगतेगा। यदि वह सम्प्रभु समाज में शान्ति कायम रखने और नागरिकों को सुरक्षा देने में विफल हो जाता है, तो लोग उसके प्रति वफादारी से मुक्त हो सकेंगे।

रूसो का सम्प्रभुता–सिद्धान्त

रूसो ने सम्प्रभुता को मूल लोगों की सामान्य इच्छा में पाया। रूसो के अनुसार जनता अपनी सामान्य इच्छा का निवेश अपने किसी प्रतिनिधि में करती है और वह प्रतिनिधि सम्प्रभुता को प्रयोग में लाता है। जनता इस प्रत्यायोजित शक्ति को जब चाहे वापस ले सकती है या संशोधित कर सकती है। रूसो के अनुसार प्रतिनिधि सरकार नहीं हो सकती है, क्योंकि लोगों की सम्प्रभुता का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। रूसो के अनुसार जिन कारणों से सम्प्रभुता असंक्रमणीय है, उन्हीं कारणों से यह अविभाज्य भी है – क्योंकि इच्छा या तो सामान्य होती है अथवा नहीं होती है। यह या तो लोगों के समूह की इच्छा होती है या उनके किसी भाग की इच्छा होती है।

बेन्थम का सम्प्रभुता–सिद्धान्त

बेन्थम को विधायी विज्ञान का संस्थापक माना जाता है। उसके अनुसार सम्प्रभुता लोगों में होती है। यह लोगों के द्वारा और लोगों के लिए आरक्षित होती है। बेन्थम के अनुसार सम्प्रभुता का गणित इतना आसान नहीं है कि आप यह कहकर मुक्त हो जाएँ कि सम्प्रभुता लोगों में होती है, बल्कि यह कहना उचित होगा कि सम्प्रभुता लोगों में होनी चाहिए। बेन्थम ने प्रमुखतः सम्प्रभुता का अर्थ विधि–निर्माण की प्रधिकारिता से लिया है। बेन्थम के अनुसार विधायिका ही किसी राज्य का वह अंग है, जिसे सभी कार्य करने की प्रधिकारिता प्राप्त है – लेकिन बेन्थम ने विधायिका को अपने कर्त्तव्यों अथवा उत्तरदायित्वों से मुक्त नहीं किया है।

ऑस्टिन का सम्प्रभुता–सिद्धान्त

ऑस्टिन द्वारा दी गई सम्प्रभुता की अवधारणा हॉब्स की अवधारणा पर आधारित थी। ऑस्टिन ने आत्यंतिकता को महत्त्वपूर्ण माना है। ऑस्टिन के अनुसार राज्य के अन्तर्गत सम्प्रभुता अनिवार्य है और सम्प्रभु को राज्य के भीतर अवश्य होना चाहिए। ऑस्टिन के अनुसार कोई सरकार जब सम्प्रभु होती है, तो वह ठीक उसी समय किसी अन्य सत्ता के अधीन नहीं हो सकती। ऑस्टिन के अनुसार सम्प्रभुता अविभाज्य है। ऑस्टिन ने

कहा कि या तो कोई एक व्यक्ति सम्प्रभु हो सकता है या व्यक्तियों का कोई वर्ग–विशेष सम्प्रभु हो सकता है। यदि सम्प्रभुता को अंशों में बाँट दिया जाए, तो सम्प्रभुता में वह अधिकारिता नहीं रहती – जो इसे बाध्यकारी बनाती हो। ऑस्टिन के अनुसार सम्प्रभुता का असीमित होना भी आवश्यक है तथा सम्प्रभु पर किसी भी प्रकार की विधिक सीमा अधिरोपित नहीं होती। वस्तुतः ऑस्टिन की सम्प्रभुता की संकल्पना की असीमितता ब्रिटिश संसदीय सर्वोच्चता को ध्यान में रखते हुए प्रकट की गई है, जो किसी विधि को निर्मित करने या निरस्त करने के लिए परमशक्तिसम्पन्न है। ऑस्टिन के सम्प्रभुता–सिद्धान्त की प्रमुख आलोचना यही है कि वर्तमान परिदृष्य में, जहाँ अधिकतर राज्यों में शासन की अवधारणा एक लोकतांत्रिक और कल्याणकारी रूप ग्रहण कर चुकी है, वहाँ – किसी ऐसे सम्प्रभु की उपस्थति शोभा नहीं देती, जो एक सीमा से अधिक शक्तिशाली हो। स्वयं राज्य ही अपने भीतर अनेक प्रकार के कार्य करने वाले अंगों को एक ही समय पर अधिकारिता भी देता है और उन पर नियन्त्रण भी स्थापित करता है। इस प्रकार आत्यन्तिक सम्प्रभुता के स्थान पर सीमित सम्प्रभुता की अवधारणा का जन्म होता है और वर्तमान में अधिकतर राज्यों में यही प्रचलित है।

कोविड–19 के बाद जो परिस्थिति बनेगी, उसमें विभिन्न राज्यों की सम्प्रभुता–स्थिति में अत्यन्त रोचक परिवर्तन होंगे, यह तय है – लेकिन इस पर चर्चा करने से पहले जरूरी है कि उन प्रमुख राज्यों की सम्प्रभुता सम्बन्धी अवधारणाओं पर विचार किया जाए, जहाँ सम्प्रभुता की अवधारणा उन राज्यों के प्राचीन इतिहास से तो प्रभावित हुई ही है, उस पर विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों, बड़े औद्योगिक परिवर्तनों और समय–समय पर होने वाली राजनैतिक उठापटक का भी प्रभाव पड़ा है।

ब्रिटेन में सम्प्रभुता

ब्रिटेन में एकात्मक शासन–प्रणाली है, जहाँ सर्वोच्चता संसद में निहित है। ब्रिटेन के बारे में यह कहा जाता है कि ब्रिटेन की संसद एक स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के अलावा सब कुछ कर सकती है। ब्राइस के अनुसार ब्रिटेन की संसद कोई भी कानून बना सकती है, उसे निरस्त कर सकती है और उसके स्थान पर दूसरा कानून ला सकती है। वह देश की शासन–पद्धति तक को बदल सकती है। वह क्राउन के उत्तराधिकार को भी बदल सकती है। यहाँ तक कि वह नागरिकों के मूल अधिकारों में भी परिवर्तन कर सकती है। इस दृष्टि से तो ब्रिटेन की संसद अनुत्तरदायी और सर्वशक्तिमान प्रतीत होती है, लेकिन ऐसा नहीं है। ब्रिटेन में संसद व क्राउन के मध्य एक झीना विवाद सदैव देखने को मिला है, क्योंकि ब्रिटेन में क्राउन अपने आप को कार्यकारी प्रमुख मानता है और वह यह भी मानता है कि बिना उसकी सहमति के संसद उसके अधिकारों में कटौती नहीं कर सकती। ब्रिटिश संसद एक ऐसा निकाय है जो हाउस ऑफ कामंस, हाउस ऑफ लॉर्ड्स व क्राउन से मिलकर बना है। वहाँ संसदीय कार्यवाही के लिए क्राउन की सहमति आवश्यक होती है।

अमेरिका में सम्प्रभुता

चूँकि अमेरिका में शासन–संचालन के लिए संघीय व्यवस्था अपनाई गई है। एक संघीय व्यवस्था में किसी सम्प्रभु की खोज करना असंभव है। अमेरिका में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य के मध्य शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि न तो केन्द्र राज्य की शक्तियों में कोई कमी कर सकता है और न ही राज्य अपनी सीमाओं से बाहर जा सकते हैं। अतः अमेरिका में संविधान मूल विधि है। यही नहीं, वहाँ केन्द्र और राज्य के मध्य किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए फेडरल न्यायालय की स्थापना की गई है। अमेरिका में कार्यपालिका और विधायिका के मध्य एक स्पष्ट अन्तर किया गया है। कार्यपालिका और विधायिका के मध्य विवाद की स्थिति में न्यायालय ही सर्वोपरि होता है। न्यायालय के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति है। वह विधायिका अथवा कार्यपालिका के कृत्यों को अविधिमान्य कर सकता है। फिर भी अमेरिका में किसी प्रकार की सम्प्रभुता न्यायालय में नहीं ढूँढी जा सकती – क्योंकि न्यायालय न तो विधि का निर्माण करता है और न ही देश पर शासन करता है। प्रश्न यह उठता है कि क्या अमेरिकी शासन–प्रणाली में कहीं कोई सम्प्रभु है अथवा नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर ऑस्टिन ने ढूँढ़ने का प्रयास किया और अमेरिका में उस शक्ति में सम्प्रभुता को अभिनिहित माना, जो संविधान में संशोधन कर सकती हो। ऑस्टिन के अनुसार 1787 ई. में अमेरिका का संविधान बनाने वाले दो मुख्य घटक राज्यों के प्रतिनिधि और डेप्युटीज थे। अतः आर्टिकल 5 से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रत्येक राज्य की सम्प्रभुता और फेडरल यूनियन से उत्पन्न वृहत्तर राज्य की सम्प्रभुता एक समुच्चय निकाय बनाने वाली राज्य सरकारों में निवास करती है। अमेरिका में संविधान–संशोधन की प्रक्रिया काँग्रेस के दोनों सदनों के दो–तिहाई बहुमत द्वारा या विभिन्न राज्यों की दो–तिहाई विधायिकाओं के आवेदन पर प्रारम्भ हो सकती है। ऑस्टिन का यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अमेरिका में सम्प्रभुता संविधान–संशोधन–प्राधिकारी में निहित होती है। इसके तीन प्रमुख कारण हैं –

1. सम्प्रभुता स्थाई होती है, लेकिन संविधान–संशोधन प्राधिकारिता का प्रयोग कम ही होता है।
2. संविधान–संशोधन का प्राधिकार असीमित शक्ति नहीं धारण करता।
3. राज्य की सहमति के बिना सीनेट में समान मताधिकार से उसे संशोधन द्वारा वंचित नहीं किया जा सकता।

स्पष्ट है अमेरिका में किसी एक अंग में सम्पूर्ण और अविभाजित सम्प्रभुता की खोज करना बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं होगा। वहाँ सम्प्रभुता कई भागों में विभाजित, लेकिन एक–दूसरे को संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत नियंत्रित करने वाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में उल्लिखित एक वाक्यांश 'हम संयुक्त राज्य के लोग' ही हमें वहाँ की सम्प्रभुता के मामले में किसी निष्कर्ष तक पहुँचा सकता है।

भारत में सम्प्रभुता

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् जब भारत की स्वशासन–प्रणाली के विकास का समय आया, तो हमारे विधि–निर्माताओं ने अपने दृष्टिफलक को यथासंभव विस्तृत रखा। उन्होंने एक केन्द्रीकृत शासन–प्रणाली, जिसमें सभी निर्णय किसी एक ही स्रोत से निसृत होते हों, को स्वीकार करने के बजाय एक ऐसी विकेन्द्रीकृत कृत शासन–प्रणाली को आदर्श माना – जिसमें पर्याप्त लोच हो। साथ ही उन्होंने यह चिन्ता भी की कि यह लोच इतना अधिक न हो कि आपातकाल में कोई निर्णय ही न लिया जा सके।

भारत में सम्प्रभु विधायिका एवं कार्यपालिका की शक्तियों का वितरण केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है। संघसूची के विषयों पर संसद को व राज्य–सूची के विषयों पर राज्य की विधायिकाओं को विधि–निर्माण का अनन्य अधिकार दिया गया है। समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र व राज्य दोनों के पास विधि–निर्माण का अधिकार रखा गया है। यदि केन्द्र और राज्य के मध्य किसी प्रकार का विवाद उपस्थित हो, तो उसके निपटारे के लिए उच्चतम न्यायालय को अधिकारिता दी गई है।

भारत के संविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता। संविधान में कुछ प्रावधान ऐसे हैं, जो विधायिका के क्षेत्र में संसदीय विधि की अपेक्षा करते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249, 250 और 252 अपनी मूल प्रवृत्ति में केन्द्राभिमुख हैं। अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा विशेष बहुमत द्वारा राज्यसूची के किसी विषय पर लोकसभा को एक वर्ष के लिए कानून बनाने के लिए अधिकृत कर सकती है, यदि वह ऐसा करना राष्ट्रहित में आवश्यक समझे। अनुच्छेद 250 के अनुसार यदि आपातकाल की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, तो राज्यसूची के विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति केन्द्र की होगी। अनुच्छेद 251 के अनुसार अनुच्छेद 249 व 250 की कोई बात, किसी राज्य के विधान–मण्डल की ऐसी विधि बनाने की शक्ति को, जिसे इस संविधान के अधीन बनाने की शक्ति उसको है, निर्बन्धित नहीं करेगा – लेकिन यदि किसी राज्य के विधान–मण्डल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबन्ध संसद द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे उक्त अनुच्छेदों में से किसी अनुच्छेद के अधीन बनाने की शक्ति संसद को है, किसी उपबन्ध के विरुद्ध है – तो संसद द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होगी। स्पष्ट है कि भारत में आपातकाल के समय अवशिष्ट शक्तियाँ घनीभूत होकर केन्द्र में ही निहित हो जाती हैं। हाँ, यहाँ ऐसे समय में भी सम्प्रभुता संसद में अनन्य रूप से निहित नहीं मानी जा सकती, क्योंकि वह उसी सीमा तक अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है, जिस सीमा तक संविधान उसे अनुमति देता है।

भारतीय शासन–प्रणाली कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से चलती है। कहा जा सकता है कि भारतीय शासन–प्रणाली इन तीन उपभागों – कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका – में विभाजित है, लेकिन इनमें से किसी भी भाग के पास अविभाज्य व सम्पूर्ण सम्प्रभुता नहीं है। ये तीनों ही भाग अन्तर्सम्बन्धित हैं और एक–दूसरे पर अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। साथ ही इन तीनों से इतर इनके प्रमुख के रूप में संसद को सम्प्रभु मानने की दलीलें भी दी जाती रही हैं, क्योंकि संसद के पास विधि–निर्माण की अनन्य शक्ति है – फिर भी संसद को सम्प्रभु नहीं माना जा सकता। इसके तीन प्रमुख कारण हैं –

1. यह विधि–निर्माण करके मूल अधिकारों की अवहेलना नहीं कर सकती।
2. इसे संवैधानिक प्रावधानों के अधीन भंग किया जा सकता है।
3. यह विधि–निर्माण द्वारा न्यायिक शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकती।

डेल्ही लॉज एक्ट, रि AIR 1951 SC 332 में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि एक अनम्य संविधान के परिप्रेक्ष्य में संसद की सर्वोपरिता मूलतः असंगत सिद्धान्त है। संसद द्वारा बनाई गई किसी भी ऐसी विधि को जो संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण करती है, निरस्त करने का अधिकार न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से उच्चतम न्यायालय को दिया गया है। उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च न्यायिक संस्था है, जो केन्द्र एवं राज्यों को अपनी–अपनी सीमा के अन्तर्गत कार्य करने तथा कार्यपालिका व विधायिका के कृत्यों को अविधिमान्य घोषित करने की शक्ति रखती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या इस एक आधार पर उच्चतम न्यायालय को सम्प्रभु माना जा सकता है? वस्तुतः उच्चतम न्यायालय न तो विधि का निर्माण करता है और न ही देश पर शासन करता है। अतः उच्चतम न्यायालय को सम्प्रभु नहीं माना जा सकता।

भारत में केन्द्र और राज्य तथा सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों का स्रोत संविधान है, इसलिए संविधान की सम्प्रभुता के पक्ष में भी तर्क दिए जा सकते हैं। सरकार का कोई भी अंग ऐसा कार्य नहीं कर सकता, जो संविधान के विरुद्ध हो। ऐसे बहुत से मामले हैं, जिनमें संसद और संविधान के उपबन्धों के मध्य टकराव होने पर उच्चतम न्यायालय ने संविधान को ही सम्प्रभु माना है – जैसे *रि, अंडर आर्टिकल 143 (केशव सिंह का मामला) भारत का संविधान, AIR 1965 SC 745* अथवा *गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, AIR 1967 SC 1643* का मामला। वस्तुतः भारत के संविधान में व्यक्तियों की सरकार की बात न करके विधि के शासन की बात की गई है।

भारत के सन्दर्भ में संविधान की सम्प्रभुता का तर्क अपनी जगह ठीक लगता है, लेकिन यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह उभरकर सामने आता है कि संविधान तो स्वयं अनुच्छेद 368 के अधीन संशोधनीय है – तो क्या यह कहा जा सकता है संविधान का अनुच्छेद 368 ही सम्प्रभु है? नहीं, अनुच्छेद 368 को भी सम्प्रभु नहीं माना जा सकता। इसके कतिपय कारण हैं –

1. संशोधन–शक्ति का प्रयोग कभी–कभी होता है।
2. संशोधन–शक्ति की प्रक्रियात्मक सीमाएँ हैं।
3. संशोधन–शक्ति का प्रयोग करके संविधान के मूल ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

4. संशोधन–शक्ति द्वारा किया गया संशोधन उस उच्च विधि का स्तर प्राप्त नहीं कर सकता, जो संविधान को प्राप्त है।
5. संविधान–संशोधन की विधिमान्यता संविधान के उल्लंघन के आधार पर चुनौती देने योग्य है, जबकि संविधान की विधिमान्यता चुनौती योग्य नहीं है।

स्पष्ट है कि एक अविभाज्य और सर्वोच्च सम्प्रभुता की खोज भारतीय परिप्रेक्ष्य में नहीं हो सकती। भारत में सम्प्रभुता अनेक स्तरों पर इस प्रकार विभाजित कर दी गई है कि यहाँ सम्प्रभुता किसकी है, इस सम्बन्ध में कोई बड़ा विवाद उत्पन्न नहीं होता। इसके विपरीत यहाँ तो राज्य तथा राज्य के प्रत्येक अंग में एक उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। यह उत्तरदायित्व की भावना उन कोटि–कोटि भारतीय नागरिकों के प्रति होती है, जिनसे सम्प्रभुता प्रसूत होती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, *AIR 1963 SC 1241* के निर्णय का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें यह कहा गया कि संविधान जिन विधिक सिद्धान्तों पर आधारित है – उनका भाव यह है कि सम्प्रभुता की सारी शक्तियाँ लोगों द्वारा पुनर्ग्रहीत कर ली गई हैं और विधिक सम्प्रभुता भारत के लोगों में ही निहित हो गई है, जिन्होंने – जैसा कि संविधान की प्रस्तावना में वर्णित है – भारत को एक सम्प्रभु प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र का रूप दिया है।

इंदिरा नेहरू गाँधी बनाम राज नारायण, *1975 supp SCC 1* के वाद में न्यायाधिपति बेग ने एक सामंजस्यपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए कहा कि वे व्यक्ति, जो सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य के तीनों अंगों का भार सँभाले हुए हैं, जनता की ओर से प्रभुत्वसम्पन्न शक्ति के तीन पहलुओं का प्रयोग गठित करते हैं तथा मुझे राजनैतिक भाव में सर्वसत्ताधारी जनता व विधिक रूप से सर्वोच्च संविधान के प्रतीकस्वरुप गणराज्य की प्रभुसत्ता के भाव के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का यह एक ही मार्ग दिखाई देता है, जिससे कि गणराज्य के तीनों अंगों में से हर एक की सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न शक्तियों का संविधान के सकारात्मक और नकारात्मक, अभिव्यक्त और विवक्षित दोनों ही आज्ञाओं के अनुरूप प्रयोग किया जाना था।

सम्प्रभुता की संकल्पना में परिवर्तन

देश, काल व परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक संकल्पना में परिवर्तन आता है। सम्प्रभुता की संकल्पना इसका अपवाद नहीं हो सकती। मध्यकालीन राज्यों के उदय, उनके आपसी टकराव और हर समय उपस्थित बाहरी आक्रमणों और भीतरी विद्रोहों की आशंका ने सम्प्रभुता की एक अविभाज्य, असीमित और सर्वोच्च संकल्पना को जन्म दिया। चाहे बोदाँ हो, हॉब्स हो या ऑस्टिन हो – अपने समकालीन परिप्रेक्ष्य में सभी विचारवेत्ता अपनी जगह सही ठहराए जा सकते हैं। फिर भी विगत दो सदियों में – मुख्यतः बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक के बाद, जब अनेक स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ और उनकी शासन–प्रणालियों पर वैज्ञानिक–सामाजिक अनुशासनों में हुई प्रगति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा – सम्प्रभुता की अवधारणा में बहुत परिवर्तन आया है। इस दौरान सम्प्रभुता की परम्परागत संकल्पना खण्डित हुई, क्योंकि राज्यों की शासन–प्रणाली अब एकसंघीय और केन्द्रीकृत न रहकर विकेन्द्रीकृत हो गई थी। स्वयं राज्य अब अनेक संगमों के संघ थे, जिन्हें निश्चित अनुशासनों में आबद्ध होना पड़ा था। अब उनमें अपने नागरिकों पर शासन करने की भावना ही प्रमुख नहीं रह गई थी, वरन् वे अपने नागरिकों के, जो कि अब जागरूक होने लगे थे, हर प्रकार के विकास के लिए बाध्यकारी रूप में उत्तरदायी थे। प्रथम और द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद मानवाधिकारों को अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने की माँग विश्व के प्रत्येक क्षेत्र से उठी। एक छोटे से राज्य से लेकर सारे विश्व की ठेकेदारी करने का दंभ पालने वाले कथित महाबली राज्य भी इन माँगों के सामने घुटनों के बल पर आते दिखाई दिए। वस्तुतः यह 'बम–बारूद–धमकी–युद्ध और विनाश' से 'उत्तरदायित्व–सहयोग–विनम्रता–मित्रता और सबके विकास' की ओर होने वाली यात्रा का प्रस्थान–बिंदु था, यद्यपि शीत–युद्ध ने इस भावना को गहरी ठेस पहुँचाई – लेकिन शीत–युद्ध वैसा विनाश नहीं रच सका, जैसा प्रथम और द्वितीय विश्व–युद्ध ने रचा था। इस परिदृश्य में कोई भी राज्य, सम्प्रभुता की पारंपरिक संकल्पना पर अड़ा रहकर अपने ही हितों पर कुठाराघात करने की स्थिति में नहीं था, लेकिन वह किसी भी हाल में अपना राजनैतिक आधार फिर भी खोना नहीं चाहता था। अन्तरराष्ट्रीय पटल पर ऐसा करना उस राज्य के लिए उस समय आसान भी था, क्योंकि उसके सामने अमेरिका नहीं, तो रूस और रूस नहीं, तो अमेरिका की मित्रता हासिल करने का विकल्प सुरक्षित था। यदि किसी राष्ट्र को दोनों ही विकल्प पसन्द नहीं थे, तो गुटनिनिरपेक्ष आन्दोलन जैसा छलावा भी उस समय उपलब्ध था।

आज अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति बहुत अधिक बदली हुई है। कोविड'19 के माध्यम से विनाश रचकर चीन अन्तरराष्ट्रीय मंच पर एक दानव के रूप में निर्भय होकर नाच रहा है। आर्थिक–राजनैतिक दृष्टि से पूरी दुनिया को कब्जे में लेने के लिए वह अन्तरराष्ट्रीय नैतिकता के सभी प्रतिमान भंग कर चुका है। अभी तो दुनिया के अनेक राष्ट्र, जिनमें अमेरिका व रूस भी सम्मिलित हैं, कोविड'19 के दुष्प्रभावों से उभरने का प्रयत्न कर रहे हैं। जैसे ही स्थिति सामान्य होगी, उन्हें चीन को कोविड'19 के विनाश का अपराधी घोषित व सिद्ध करने के लिए ध्रुवीकृत होना पड़ेगा। इस ध्रुवीकरण में उनकी विवशता होगी कि विश्व में न केवल चीन के मुकाबले की शक्ति स्थापित करने के लिए, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा को बचाए रखने के लिए भी, वे अपनी सम्प्रभुता से समझौता करें अर्थात् उसे अपने ध्रुवीय नेतृत्त्व को समर्पित करें, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि राष्ट्र के रूप में वे अपनी पहचान खो देंगे। उनके राष्ट्रीय स्वरूप में कोई बिगाड़ नहीं आएगा, लेकिन उनकी सम्प्रभुता की पुरानी व कठोर अवधारणा निश्चित रूप से खण्डित हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, कोई राष्ट्र यह नहीं कह सकेगा कि किसी ध्रुव की सम्प्रभुता वही होगी – जो वह तय करेगा। वस्तुतः यह समझौता किसी भी स्थिति में इतना कमजोर नहीं होगा कि किसी एक ध्रुव

का नेतृत्त्व आपातकाल में कोई निर्णय लेने के लिए एक–एक सदस्य राष्ट्र का मुँह तके – नहीं तो चीन जैसे सक्षम राष्ट्र के विरुद्ध खड़ा ही नहीं हुआ जा सकेगा। चीन का भरोसा किया ही नहीं जा सकता। आज वह कोविड'19 लेकर आया है, तो कल वह कोई और जैविक कारखाना बनाकर विनाश रचने के लिए खड़ा जाएगा। वह ऐसा न कर सके, इसलिए किसी ध्रुवीय नेतृत्त्व को, दुनिया के अन्य ध्रुवीय नेतृत्त्वों को विश्वास में लेते हुए अथवा न लेते हुए, अपने निर्णय त्वरित रूप से लेने होंगे, जो ध्रुव के सदस्य राष्ट्रों की संवैधानिक अलग–अलग पोथियाँ खोलकर बैठने या उनकी सहमति–असहमति की व्यापक स्वीकृति प्राप्त होने की प्रतीक्षा करके नहीं लिए जा सकेंगे।

जब चीन के विरुद्ध ध्रुव बनेंगे, तो ऐसा नहीं है कि वह चुप बैठेगा। वह भी दुनिया की इस नई ध्रुवीय व्यवस्था का जवाब प्रस्तुत करेगा। उसके लिए सुविधा यह होगी कि बुनियादी तौर पर वह तो है ही दूसरे देशों की सम्प्रभुता को निगल लेने वाला, इसलिए किसी विवशता के कारण उसके साथ खड़े होने वाले राष्ट्रों को वह किसी भी स्थिति में छोड़ेगा नहीं। यह सच है कि चीन बड़े स्तर पर अपने पक्ष में राष्ट्रों का ध्रुवीकरण नहीं कर सकेगा, लेकिन यह भी सच है उसने कोविड'19 जैसा दुनिया को खतरे में डालने वाला अपनी ओर से सफल प्रयोग कर लिया है, इसलिए वह उसके विरुद्ध ध्रुवीकृत राष्ट्रों के दबाव में भी नहीं आएगा। वह दबाव में तभी आएगा, जब वह देख लेगा कि उसके विरुद्ध एक हुए राष्ट्रों में सम्प्रभुता के प्रश्न पर झगड़ा होने की सम्भावना कम ही है। वैचारिक स्तर पर वह, पूँजीवाद का नाम लेकर, मरते जा रहे मार्क्सवाद में भी प्राण फूँकने का प्रयास करेगा – जिसके झण्डे तले सदैव यही कहा गया कि सम्प्रभुता की अवधारणा लोगों के शोषण और दमन का साधन रही है और इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रयास में उसे सफलता नहीं मिलेगी, क्योंकि चीन स्वयं अपनी राष्ट्रीय सम्प्रभुता को दूसरे राष्ट्रों की सम्प्रभुता हड़पने के काम लेता आया है। वैसे भी मार्क्सवाद विश्व में जिस शुद्ध अराजकता की बात करता है, वह स्वीकार करने योग्य हो नहीं सकती – क्योंकि मार्क्सवाद में एक पवित्र साध्य को प्राप्त करने के लिए अपवित्र साधनों का प्रयोग उचित बताया गया है।

यहाँ यह भी चर्चा कर लेना आवश्यक है कि जेथ्रो ब्राउन ने राज्य की संकल्पना एक निगम के रूप में की है। ब्राउन के अनुसार राज्य एक ऐसा निगम है, जो सम्प्रभु है और अपने विशिष्ट अंगों के माध्यम से अपनी सम्प्रभुता को लागू करता है। इस रूप में सम्प्रभु, समुदाय से भिन्न न होकर उसका अंग है और समुदाय इसलिए सम्प्रभु है कि वह सरकार के अंगों द्वारा अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति करता है। केल्सन ने सम्प्रभुता और मूलमानक में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया है। केल्सन के अनुसार सम्पूर्ण विधिक व्यवस्था व उसकी अधिकारिता स्वयं मूलमानक में ही अवस्थित है।

स्पष्ट है कि सम्प्रभुता की संकल्पना कभी स्थिर नहीं रही। देश, काल व परिस्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन आता रहा है और आते रहना भी चाहिए – क्योंकि मानवता का हित इसी में है। विश्व में कोविड'19 के कारण अब जो स्थिति बनी है, वह मानवता के हित में बिल्कुल नहीं है। एक ओर हम विश्व–नागरिकता की कल्पना करते हैं व दूसरी ओर चीन जैसे देश दुनिया पर कब्जा करने के लिए कूटनीति के निम्नतम स्तर जाते हुए अपने ही लाखों नागरिकों को अपनी ही पैदा की हुई महामारी की भेंट चढ़ा रहे हैं।

उत्तर–सम्प्रभुता व विलम्बित सम्प्रभुता

कोविड'19 से उपजी परिस्थिति में हमें उत्तर–सम्प्रभुता व विलम्बित सम्प्रभुता के उपागम से भी आगे निकलना होगा। विगत दशकों में वैश्वीकरण ने सम्प्रभुता की संकल्पना पर समुचित प्रभाव छोड़ा है। मैक कार्मिक के अनुसार इस नए परिवर्तन को उत्तर–सम्प्रभुता के नाम से जाना जाता है। उत्तर–सम्प्रभुता की संकल्पना का मूल यह है कि अब सम्प्रभुता को एक राज्य विशेष और उसके नागरिकों के मध्य सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं देखा जा सकता। जैसे–जैसे वैश्वीकरण हुआ है, वैसे–वैसे राज्य एक–दूसरे पर बहुत सारे मामलों में निर्भर होते चले गए हैं। राज्यों ने आपस में मिलकर एक रूप में संघों का निर्माण कर लिया है – जैसे यूरोपियन यूनियन। इस तरह के संघ में राज्य अपनी सम्प्रभुता का कुछ भाग स्वेच्छा से त्याग देते हैं और आपसी सहयोग के आधार पर कुछ मामलों में उस संघ की सामूहिक सहमति पर निर्भर हो जाते हैं। राज्यों द्वारा आपसी सहमति से सम्प्रभुता के हिस्से में कटौती और एक कृत्रिम संघ के भीतर रहकर अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों को निभाया जाना ही उत्तर–सम्प्रभुता है।

नील वाकर के अनुसार उत्तर–सम्प्रभुता अब तक पूर्ण अर्थ में उत्तर–सम्प्रभुता नहीं हो सकी है। उसके अनुसार यह बात ठीक है कि राज्यों ने एक संघ बनाया है और उस संघ के अन्तर्गत वे अनेक आवश्यक प्रश्नों को हल भी करते हैं, लेकिन राज्य अब भी मूलतः सम्प्रभु ही बने हुए हैं। वस्तुतः राज्यों ने अपनी सम्प्रभुता का त्याग नहीं किया है, वरन् उन्होंने अपनी सम्प्रभुता पर इस बात की मुहर लगा दी है कि वे पहले से कहीं अधिक स्वतन्त्र हैं। और वह इस प्रकार कि वे जब चाहें उस संघ से अलग हो सकते हैं और उन्हें अलग होने से कोई रोक नहीं सकता। नील वाकर ने इस प्रकार की दुर्बल उत्तर–सम्प्रभुता को विलम्बित सम्प्रभुता नाम दिया है।

लाफलिन के अनुसार उत्तर–सम्प्रभुता – और विलम्बित सम्प्रभुता भी – अभी अपरिपक्व अवस्था में है। वस्तुतः सम्प्रभुता शासन करने वाले और शासित होने वाले लोगों के मध्य एक राजनैतिक सम्बन्ध है, जो दो तत्त्वों से मिलकर बना है। ये दो तत्त्व हैं – सक्षमता और सामर्थ्य। जहाँ सक्षमता औपचारिक विधिक प्रधिकारिता प्रदान करती है, वहीं सामर्थ्य इस बात का सूचक होता है कि वास्तव में राजनैतिक शक्ति कहाँ है। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यूरोपियन यूनियन की स्थापना सम्प्रभुता को समाप्त करने वाली नहीं मानी जाएगी। लाफलिन के अनुसार सम्प्रभुता अभी भी राज्यों के साथ ही है और इसकी कसौटी यह है कि राज्य इस यूनियन से अपनी सदस्यता वापस ले सकते हैं।

ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना (पोस्टनमॉडर्न कॉन्सेप्ट ऑफ पोलराइज्ड सोवेरेनिटी)

उत्तर–सम्प्रभुता व विलम्बित सम्प्रभुता की पूरक अवधारणाएँ अपनी उत्पत्ति के साथ ही धराशायी हो गई हैं, क्योंकि इनमें राष्ट्र, बजाय किसी संघ के प्रति उत्तरदायी होने के, उस संघ या समूह पर अधिक से अधिक कब्जा जमाने में लग जाते हैं, जिसके वे सदस्य होते हैं। इतना ही नहीं, यदि कोई राष्ट्र एक से अधिक संघों या समूहों का सदस्य है, तो वह एक से अधिक संघों या समूहों पर कब्जा जमाने की कोशिश करता है। इस प्रकार वह अपनी सम्प्रभुता, जो उस तक ही सीमित थी, को अन्तरराष्ट्रीय विस्तार देने की कुचेष्टा करता है। यह अभ्यास आज के परिदृष्य में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कदाचित् चीन ने इस परिस्थिति का लाभ ही उठाया है, क्योंकि वह कई समूहों में प्रभावी हस्तक्षेप रखता है।

इसके अतिरिक्त यह लगता था कि अन्तरराष्ट्रीय विधि के एक स्वतन्त्र उपभाग के रूप में विकसित हुई प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि सम्प्रभुता की संकल्पना में आमूलचूल परिवर्तन कर देगी, लेकिन वह भी नहीं हो पाया – यद्यपि वर्तमान में ऐसे अनेक अन्तरराष्ट्रीय व्यापारिक निगम हैं, जो राज्यों के भीतर न केवल व्यापार करते हैं – वरन् उनकी आर्थिक नीतियों को भी प्रभावित करते हैं। यह बात भी सही है कि वित्त किसी भी राज्य के लिए उसके शरीर में बहते रक्त के समान होता है। यदि इस रक्त पर ही किसी दूसरे – भले ही वह संघ या निगम हो – का नियन्त्रण हो जाए, तो सम्प्रभुता की स्थिति और भी जटिल हो जाती है। सास्नेन सास्किया ने इसे शक्ति का नया भूगोल माना है। इसमें वैश्विक पूँजी बाजार के साथ ट्राँसनेशनल विधि फर्म्स, अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्यिक आर्बिट्रेशन, अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार संहिताएँ और इलेक्ट्रॉनिक आर्थिक गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। यह सब होते हुए भी शक्ति के इस नए भूगोल में वे सभी बुराइयाँ उपस्थित हैं, जो उत्तर–सम्प्रभुता या विलम्बित सम्प्रभुता की व्यवस्था में हैं। लाफलिन के इस वक्तव्य को खण्डित नहीं किया जा सकता कि वैश्विक बाजार को दी गई किसी भी प्रकार की शक्ति से राज्य अपना पीछा नहीं छुडा सकता। इसके मूल में वह निर्भरता है, जो राज्य को एक तरह से वैश्विक पूँजी का कर्जदार बना देती है। इस वातावरण में कोविड'19 के दौर में या उसके बाद दुनिया के राष्ट्र चीन जैसी घातक सम्प्रभुता का मुकाबला कैसे करेंगे, यह एक बड़ा प्रश्न उनके सामने उपस्थित है। इस प्रश्न का एक ही हल *ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना (पोस्टनमॉडर्न कॉन्सेप्ट ऑफ पोलराइज्ड सोवेरेनिटी)* है।

सम्प्रभुता की अवधारणा के सम्बन्ध में, यदि इसके उद्गम से लेकर आज की तिथि तक के समस्त विकास पर विचार किया जाए, तो – इस शोध–आलेख के लेखक को लगता है इक्कीसवीं सदी अभी तीन चौथाई से अधिक गुजरनी शेष है और विकसित राष्ट्र शेष दुनिया पर आर्थिक आधिपत्य जमाने के लिए आपस में नैतिक दृष्टि से निम्नस्तरीय प्रतिस्पर्द्धा में उलझे हुए हैं। यह अन्तरराष्ट्रीय विधि के लिए भी एक चुनौती है, क्योंकि इस प्रतिस्पर्द्धा में अविकसित व विकासशील राष्ट्रों के नागरिक न केवल अपना जीवन–स्तर उन्नत नहीं कर पा रहे हैं, बल्कि वे बहुत बड़ी संख्या में मारे भी जा रहे हैं। कोविड'19 इसका जीता–जागता उदाहरण है। ऐसी स्थिति में विश्व के राष्ट्र एक बार पुनः ध्रुवीकृत होंगे और, ध्रुवीकरण के इस संक्रमण–काल में उन्हें अपनी सम्प्रभुता को पुनर्रेखांकित करना होगा। इस हाल में विभिन्न संकटों मुकाबला करने के लिए उन्हें एकल सम्प्रभुता का त्याग करके सामूहिक सम्प्रभुता का विकास करना होगा। इस शोध–आलेख का लेखक इसे *ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना (पोस्टनमॉडर्न कॉन्सेप्ट ऑफ पोलराइज्ड सोवेरेनिटी)* की संज्ञा देता है।

निष्कर्ष

सम्प्रभुता का उद्गम किसी भी राज्य की सुरक्षा और सर्वोच्चता के आदर्श से जुड़ा हुआ है, लेकिन समय के साथ सम्प्रभुता की संकल्पना में अत्यधिक परिवर्तन आ गया है। साथ ही राज्यों के मूल स्वरुप में भी परिवर्तन आया है। शासन–प्रणालियों से लेकर अर्थव्यवस्थाओं के ढाँचों में ऐसे परिवर्तन हो गए हैं कि उनकी मध्यकालीन अवधारणाओं से तुलना करना अब बेमानी प्रतीत होता है। यह सही है कि राज्यों ने अब तक एक रूढ़ संकल्पना के तौर पर अपनी सम्प्रभुता से कोई बड़ा समझौता नहीं किया है। अब भी प्रत्येक राज्य अपनी सुरक्षा और सर्वोच्चता के बारे में उसी तरह सोचता है, जैसे पहले सोचता था – किन्तु पिछले कुछ दशकों में बाजारीकरण और वैश्वीकरण के कारण सम्प्रभुता की संकल्पना में एक लोच पैदा हुआ है और वित्त एक ऐसे बिंदु के रूप में उभरा है, जिसके कारण राज्यों को एक–दूसरे पर निर्भर होना ही पड़ता है। ऐसे बहुत सारे प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय निगम हैं जिनके यहाँ दबे–छुपे तौर पर कई छोटे–बड़े राज्यों की सम्प्रभुता गिरवी पड़ी है, लेकिन राज्य इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते। वित्त के पश्चात्, कोविड'19 के कारण, इस लोच में अपने नागरिकों के जीवन की सुरक्षा का विषय भी सम्पृक्त हो गया है। कोविड'19 विकसित राष्ट्रों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा अथवा यूँ कहा जाना चाहिए कि एक प्रकार की शत्रुता का अत्यंत विनाशकारी परिणाम है। इस वातावरण में निश्चय ही, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ध्रुवीकृत सम्प्रभुता की नवोत्तर संकल्पना (पोस्टनमॉडर्न कॉन्सेप्ट ऑफ पोलराइज्ड सोवेरेनिटी) का काल प्रारम्भ होगा। सम्प्रभुता की इस नई संकल्पना को विधिशास्त्र के पारम्परिक उपकरणों या ट्रेडिशनल टूल्स से नहीं समझा जा सकेगा। इसे समझने के लिए नए हमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कुछ नए प्रतिमान गढ़ने होंगे। इन प्रतिमानों को गढ़ने में शताब्दियों पूर्व भारत के विधिशास्त्रियों द्वारा राज्यों की सम्प्रभुता के सम्बन्ध में दी गई अवधारणाएँ निश्चित रूप से प्रकाश–स्तम्भों का काम करेंगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *ए टेक्स्टबुक ऑफ जुरिस्प्रुडेंस (अँगरेजी), जी. डबल्यू. पैटन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 2002.*
2. *इण्टरनेशनल रिलेशंस एण्ड पॉलिटिक्स, जे.सी. जोहरी, स्टर्लिंग पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011.*
3. *कानूनों का निर्वचन, टी. भट्टाचार्य, सेंट्रल ला एजेंसी, इलाहाबाद, 2001.*

4. जुरिस्प्रुडेंस (अँगरेजी), डायस, लेक्सिसनेक्सिस, गुड़गाँव, 2013.
5. डेमोक्रेसी एण्ड पब्लिक पॉलिसी इन द पोस्ट–कोविड–19 वर्ल्ड : चॉइसेज एण्ड आउटकम्स (अँगरेजी), रुम्की बसु (सम्पादक), रूटलेज इण्डिया, नई दिल्ली, 2021.
6. द कॉंस्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया (अँगरेजी), ओ. पी. राय, ओरिएण्टएण्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2011.
7. द न्यू वर्ल्ड डिसऑर्डर एण्ड द इण्डियन इम्पेरेटिव (अँगरेजी), शशि थरूर, समीर सरन, एलेफ, नई दिल्ली, 2020.
8. द प्योर थ्योरी ऑफ लॉ (अँगरेजी), हेंस केल्सन, स्टैनफॉर्ड एन्साइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसॉफी, स्टैनफॉर्ड, यूएसए, 2016.
9. भारत का संविधान, डॉ. जय नारायण पाण्डेय, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, इक्यावनवाँ संस्करण, 2018.
10. भारत का संविधान, आचार्य दुर्गा दास बसु, वाधवा नागपुर, आठवाँ संस्करण, 2002.
11. भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, सुभाष काश्यप, हिन्दी माध्यम कार्यानन्वयन, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009.
12. मानव अधिकार, डॉ. एस. के. कपूर, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2019.
13. लीगल रिसर्च एण्ड राइटिंग मेथॉड्स (अँगरेजी), अनवारुल यकीन, लेक्सिसनेक्सिस, नई दिल्ली, 2008.
14. विधिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, अनिरुद्ध प्रसाद, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010.
15. विधिशास्त्र तथा विधि के सिद्धान्त, डॉ. एन. वी. परांजपे, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2010.
16. ह्यूमन राइट्स अंडर इण्टरनेशनल ला एण्ड इण्डियन ला (अँगरेजी), एस. के. कपूर, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2014.
17. https://www.bbc.com/hindi
18. http://www.asil.org/resource/home.html
19. http://www.lib.uhicago.edu/
20. http://www.law.ecel.uwa.edu.au/intlaw/
21. http://www2.spfo.unibo.it/spolfo/ILMAIN.htm
22. http://www.law.cam.ac.uk/RCIL/home.htm
23. http://www.hg.org/govt.html